24

समाधि स्वरूप

ध्यान दें:

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चार प्रकार के पुरुषार्थों में मोक्ष ही परम पुरुषार्थ होता है। दु:ख की आत्यन्तिक निवृत्ति तथा परमानन्द की प्राप्ति ही मोक्ष कहलाती है। यह मोक्ष बद्धजीव के स्वस्वरूप के अज्ञान के नाश के द्वारा होता है। स्वस्वरूप अज्ञान का नाश अखण्डाकार चित्त वृत्ति से होता है। अखण्डाकारचित्तवृत्ति निदिध्यासन के द्वारा सम्भव होती है। श्रवण के द्वारा शास्त्रगुरुवाक्य आदि का ब्रह्म में तात्पर्य समझकर के मनन के द्वारा ब्रह्मविषयक विरुद्ध युक्तियों का खण्डन करके ब्रह्मविषय में असन्दिग्ध अविपर्यस्त बुद्धि होती है। उस प्रकार के ब्रह्म में मन की स्थिति सम्पादन करना ही निदिध्यासन होता है। यह निदिध्यासन ही ब्रह्मसाक्षात्कार में कारण होता है। शास्त्रों में इस प्रकार से कहा भी है। "ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्" इस प्रकार से। अत: वेदान्त अचार्यों के द्वारा निदिध्यासन महान यत्न के द्वारा प्रतिपादित किया जाता है। निदिध्यासन ही समाधि है। निदिध्यासन की आध्यावस्था में सविकल्प समाधि होती है। पक्वावस्था में निर्विकल्प समाधि होती है। निर्विकल्प समाधि ही निदिध्यासन की पराकाष्ठा होती है। निर्वकल्प समाधि होने पर अखण्डाकार चित्तवृत्ति उत्पन्न होती है। वह चित्तवृति जीव के स्वरूप विषयक अज्ञान का नाश करती है। और स्वयं भी नष्ट हो जाती है। उससे जीव कर्मसंसारबन्धन से मुक्त हो जाता है। इसलिए हमारे द्वारा इस प्रबन्ध में समाधि का स्वरूप समाधि की आवश्यकता तथा समाधि के प्रकार इत्यादि विषयों का आलोचन किया जा रहा है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे;

- मोक्ष के उपाय कौन-से हैं तथा उनका स्वरूप क्या होता है? जानने में;
- निदिध्यासन का विशेषस्वरूप क्या होता है? जानने में;
- निधिध्यासन तथा समाधि में अभेद जानने में;
- समाधि की आवश्यकता जानने में;
- समाधि के दो भेदों को जानने में;
- चित्तवृत्ति का अज्ञाननाशकत्व जानने में;

पाठ-24

समाधि स्वरूप

ध्यान दें:

- अखण्डाकार चित्तवृत्ति का स्वरूप तथा अज्ञान नाश के प्रकारों को जानने में;
- ज्ञेयों का वृत्ति विषयत्व तथा फल विषयत्व ज्ञान जानने में;

24.1) भूमिका

"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापर:" इस प्रकार से अद्वैतवेदान्तसिद्धान है। ब्रह्म नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वरूप है। अन्त: करणोपहित ब्रह्म ही जीव कहलाता है। तथा अन्त: करणरूप उपाधि के नाश होने पर जीवत्व का भी नाश होता है। जीवत्मनाश होने पर कर्तृत भोक्तृत्वादि रूप से उत्पन्न दु:खादियों का भी नाश हो जाता है। यह आत्यन्तिक दु:खनाश ही मोक्ष कहलाता है।इस प्रकार से मोक्ष की प्राप्ति के लिए कुछ उपाय उपनिषदों में बताए गए है- बृहदारण्योकोपनिषद् में इस प्रकार से कहा गया है- "आत्मा वाऽरे द्रष्टव्य: श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य:" इस प्रकार से। स्वस्वरूप ज्ञाननाश के लिए मुमुक्षुओं के द्वारा श्रवण मनन तथा निदिध्यासन का आचरण करना चाहिए। उनमें श्रवण से तात्पर्य है "वेदान्त रूप से कहलाने वाले अद्वितीय ब्रह्म में तात्पर्यावधारणानुकूल मानसी क्रिया"। सभी वेदान्त वाक्य अद्वैत ब्रह्म का ही प्रतिपादन करते है। इसलिए तात्पर्यावधारण के लिए श्रवण रूपी मानसिक क्रिया विहित है। मनन शब्द अवधारणा के अर्थ में मानान्तरविरोधशङ्का में तन्निराकरणानुकूलतर्कात्मकज्ञान जनकमानसव्यापार: होता है। गुरुशास्त्र वाक्यों का ब्रह्म में तात्पर्य समझकर के ब्रह्मविषय में समापतित विरोधियुक्तियों के खण्डन के लिए विहित मानसी क्रिया मनन होती है। मनन के द्वारा शास्त्र के द्वारा निर्धारित अर्थ में दृढ मति होती है। श्रवण तथा मनन के द्वारा दृढनिश्चित अर्थ में उससे भिन्नविषयों से मन का स्थैर्य ही निदिध्यासन कहलाता है। इसलिए वेदान्त परिभाषा में कहा गया है। "निदिध्यासन अनादि दुर्वासना के द्वारा विषयों में आकृष्यमाण चित्त का विषयों से अपकर्षण करके आत्म विषयकस्थैर्य के अनुकूल मानस व्यापर करना निदिध्यासन होता है" इस प्रकार से श्रवण मनन तथा निदिध्यासनों के अनुष्ठान से मुक्ति होती है। इस प्रकार का वेदान्तियों का सिद्धान्त है। निदिध्यासन ही समाधि है। निदिध्यासन तथा समाधि के स्वरूप के विज्ञान के बिना उन दोनों के ऐक्य में अनेक्य प्रतिपादन नहीं कर सकते है। इसलिए सबसे पहले निदिध्यासन के स्वरूप का आलोचन किया जा रहा है।

24.2) निदिध्यासन स्वरूप

निदिध्यासन के स्वरूप में वेदान्तसार में कहा है। "विजाती देहादिप्रत्ययरहित अद्वितीयसजातीयप्रत्ययप्रवाह निदिध्यासन होता है" जाग्रत अवस्था में विविध विषयों का ज्ञान हमें होता है। अज्ञान नाश से ही ज्ञान उत्पन्न होता है। चित्तवृत्ति अज्ञान का नाश करती है। इसलिए ज्ञानस्थल में अवश्य ही चित्तवृत्ति उत्पन्न होती है। जैसे घटज्ञान के बाद पटज्ञान, तथा पट के ज्ञान के बाद में दण्ड का ज्ञान इस प्रकार से विविध ज्ञानों की उत्पत्ति से जाग्रतावस्था में चित्त की वृत्तियाँ हर क्षण अलग अलग होती रहती हैं। उससे चित्त की स्थिरता सम्भव नहीं होती है। यदि एक घट का ही निरन्तर ज्ञान हो तब निरन्तर घटविषयी चित्तवृत्ति होती है। उससे चित्त की स्थिरता सम्भव होती है। जब निरन्तर एकजातीय ही चित्त की वृत्ति होती है। तब चित्त विविध विषयों में नहीं जाता है, इस हेतु से चित्त स्थिर कहलाता है।

निदिध्यासन मोक्ष जनक होता है। इसलिए घटपटादिविषयों में निरन्तरचित्तवृत्ति का प्रवाह निदिध्यासन होता है। "तमेव विदित्वातिमृत्युमेति", "तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि" इत्यादि श्रुतियों में यह जाना जाता है कि उपनिषद् प्रतिपादित ब्रह्म के ज्ञान से ही मुक्ति होती है। इसलिए ब्रह्मविषयी निरन्तरचित्तवृत्ति ही निदिध्यासन कहलाती है। सभी इन्द्रियों के द्वार ही ब्रह्म का ज्ञान सम्भव होता है। जैसे

ध्यान दें:

आँखों से यह घट है। इस प्रकार से घट का ज्ञान होता है। उस ज्ञान में घट की सत्ता का ज्ञान होता है। घट ज्ञान के बाद किसी को कोई सन्देह नहीं होता है की घट है अथवा नहीं। वह सत्ता ही ब्रह्म की ही सत्ता होती है। ब्रह्म में अखिल प्रपञ्च के आरोप से ब्रह्म अधिष्ठान तथा प्रपञ्च आरोप्य होता है। आरोपस्थल में अधिष्ठान का अंश आरोप्यज्ञान में भासित होता है। यह नियम है। जैसे शुक्ति रजत भ्रम स्थल में यह रजत है इस प्रकार से शुक्ति में विद्यमान (सन्निकृष्टता) रजतज्ञान में रजत के अभेद से जानी जाती है। वैसे ही घट ज्ञान स्थल में ब्रह्म की स्वरूप भूता सत्ता ही घट के साथ अभिन्नता से जानी जाती है। इसलिए आँखों के सत्ताग्रहण से ब्रह्म को जाना जाता है यह स्पष्ट हो गया है।

लेकिन इन प्रापञ्चिकवस्तुओं के ज्ञानस्थल मे न केवल अद्वितीय ब्रह्म को जाना जाता है अपितु विजातीय घटपटादि के साथ तादात्म्य से ब्रह्म का ज्ञान हो जाता है। इस प्रकार से देहात्म बुद्धि स्थल में देह के साथ अभेद से आत्म का ज्ञान होता है। लेकिन विजातीयदेह घटादि के द्वारा तादात्म्य से भासमान ब्रह्म के ज्ञान से मुक्ति सम्भव नहीं होती है। उन देहघटादि से जब अलग ही ब्रह्मवस्तु का ज्ञान होता है। तब स्वस्वरूप के ज्ञान से मोक्ष होता है। इसलिए विजातीय वस्तुओं के द्वारा तादात्म्य के द्वारा भासमान ब्रह्म के विषय में निरन्तरचित्तवृत्ति निदिध्यासन होता है। लेकिन विजातीयों देहादि प्रत्ययों से रहित अद्वितीयब्रह्म के विषय में निरन्तर चित्तवृत्ति होती है तो निदिध्यासन सम्भव होता है। इसलिए देहादि के भदे से विद्यमान अद्वैत ब्रह्म के विषय में निरन्तर चित्तवृत्ति ही निदिध्यासन होता है इस प्रकार से वेदान्तसार कर्ता सदानन्द का अभिप्राय स्पष्ट होता है। आत्मविषयक स्थैर्य के अनुकूल मानस व्यापार ही निदिध्यासन होता है इस प्रकार से वेदान्त परिभाषाकार ने ख्यापित किया है। वेदान्त परिभाषाकार के द्वारा प्रतिपादित अर्थ का ही विस्तार वेदान्तसार में देखा गया है। विद्यारण्यस्वामी ने पञ्चदशी ग्रन्थ में निदिध्यासन का लक्षण इस श्लोक में कहा है

"ताभ्यां निर्विचिकित्सेऽर्थे चेतसः स्थापितस्य यत्।
एकतानत्वमेतद्धि निदिध्यासनमुच्यते॥" इति।

श्रवण तथा मनन के द्वारा निःसन्दिग्ध ब्रह्म विषय में स्थापित चित्त का यदेकतानत्व एकाकार वृत्तिप्रवाह ही निदिध्यासन होता है। यह इस श्लोक का अर्थ है। जब तक ब्रह्मज्ञान नहीं हो जाता तबतक निदिध्यासन का अनुष्ठान करना चाहिए। इस प्रकार से जितने काल तक ब्रह्म में श्रुतियों का तात्पर्यनिर्धारण नहीं हो तब तक श्रवण तथा जब तक असन्दिग्ध अविपर्यय बुद्धि का उदय नहीं हो तबतक मनन करना चाहिए। **"आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः"** इत्यादि श्रुतियों में एकबार श्रवण एकबार मनन तथा एकबार निदिध्यासन का उपदेश नहीं दिया है। इस प्रकार की श्रुतियों को अनेक बार देखने से यह स्पष्ट होता है कि श्रवण मनन निदिध्यासनादि की आवृत्ति जबतक ब्रह्म साक्षात्कार नहीं हो जाए तबतक करनी चाहिए। जिस प्रकार से धान को कूटने से चावल मिलते हैं तो जब तक चावल धान से बाहर नहीं आ जाते है तब तक उनको कूटा ही जाता है। उसी प्रकार से जबतक ब्रह्मज्ञान नहीं हो जाता तब तक नहीं होता है तब श्रवणादि की आवृत्ति करते रहना चाहिए। इसलिए भगवान बादरायण ने कहा है **'आवृत्तिरसकृदुपदेशात्'** इति।

पाठगत प्रश्न 24.1

1. परम पुरुषार्थ क्या होता है?
2. मोक्ष किस कहते हैं?
3. मोक्ष के उपाय कौन-कौन से हैं?

ध्यान दें:

4. अखण्ड चित्तवृत्ति के लिए क्या करना चाहिए?
5. जीव की उपाधि क्या होती है?
6. मोक्षसाधन निर्देशिक श्रुति कौन-सी है?
7. श्रवण किसे कहते हैं?
8. मनन किसे कहते हैं?
9. निदिध्यासन किसे कहते हैं?
10. चित्तवृत्ति क्या करती है?
11. लौकिक ज्ञानस्थल में ब्रह्म किस प्रकार से जाना जाता है?
12. श्रवणादि की आवृत्ति कितनी बार करनी चाहिए।

24.3) समाधि की आवश्यकता विचार

अब यह प्रश्न होता उत्पन्न होता है कि श्रवण तथा मनन के बाद निदिध्यासन को कहने से निदिध्यासन का ही ब्रह्मज्ञान में विधान होने से समाधि का अवसर कहाँ पर उत्पन्न होता है? यदि निदिध्यासन के भेद से समाधि का का उपन्यास होता है तो द्रष्टव्यादि श्रुति का अपलाप होगा। इसलिए यहाँ पर कहते हैं कि समाधि निदिध्यासन से व्यतिरिक्त नहीं है जिससे श्रुति का विरोध हो। निदिध्यासन ही समाधि है। इसलिए वेदान्तसार में निदिध्यासन के स्वरूप को कहने के अनन्तर ही समाधिस्वरूप को बिना कहे ही साक्षात्समाधि को दो प्रकार से कहा है। निदिध्यासन ही यदि समाधि नहीं हो तो निदिध्यासन के बाद सङ्गति निर्देश के बिना साक्षात् समाधि के आलोचन का अप्रसङ्ग हो जाता है। लेकिन निदिध्यासन तथा समाधि में भेद के अभाव से वहाँ पर अप्रासङ्गिक अपन्यास आशङ्कनीय है।

विद्यारण्य स्वामी ने तो निदिध्यासन का लक्षण कहकर के उससे भिन्न समाधि का लक्षण कहा है। समाधि का लक्षण इसप्रकार से है। -

"ध्यातृध्याने परित्यज्य क्रमाद्ध्येयैकगोचरम्।
निवातदीपवच्चितं समाधिरभिधीयते॥" इति।

श्लोक का यह अर्थ है कि ध्याता ध्यान का परित्याग करके जब चित्त ध्येयगत ही होता है तब ध्येय में निरवच्छिन्नता से निवातदी के समान रुकता हैं वह ही समाधि कहलाती है। यहाँ पर समाधि पद के द्वारा निर्विकल्पसमाधि ही उपदिष्ट है। शङ्कराचार्य जी नें भी विवेकचूडामणि में निदिध्यास के भेद के द्वारा समाधि को कहा है। इसलिए विवेकचूडामणि में कहा है-

"श्रुतेः शतगुणं विद्यान्मननं मननादपि।
निदिध्यासं लक्षगुणमनन्तं निर्विकल्पकम्॥" इति।

यहाँ पर इस श्लोक का अर्थ है की श्रवण से सौ गुना मनन होता है। तथा मनन से लक्ष गुना निदिध्यासन होता है। तथा निदिध्यासन से अनन्तगुणा निर्विकल्प समाधि होती है। लेकिन निर्विकल्प समाधि ही मोक्ष है इस प्रकार से मोक्ष के प्रति कारण भगवान शङ्कराचार्य ने प्रतिपादित किया है।

"अज्ञानहृदयग्रन्थेर्निःशेषविलयस्तदा।
समाधिनाऽविकल्पेन तदाद्वैतात्मदर्शनम्॥" इति।

ध्यान दें:

इसका यह अर्थ है की जब निर्विकल्प अद्वैत की आत्मा का ज्ञान होता है तब ही अज्ञानरूपहृदयग्रन्थी का नि:शेष विलय होता है।

इस प्रकार से विद्यारण्य स्वामी के वाक्य से तथा शाङ्करवाक्य से यह सिद्ध होता है कि समाधि निर्विकल्पसमाधि कहलाती है। इस समाधि के उदय होने पर अज्ञान नाश से मुक्ति सम्भव होती है। "निदिध्यासनशीलस्य बाह्यप्रत्यय ईक्ष्यते " इत्यादिविवेकचूडामणि के वचन से यह जाना जाता है कि यहाँ पर निदिध्यासन पद के द्वारा साधारणतया सविकल्प समाधि ही उपदिष्ट है। अब कहते हैं की निदिध्यासन तथा समाधि में जो अभेद होता हैं तो इन दोनों का उपदेश विद्यारण्य स्वामी के द्वारा तथा शङ्काराचार्य के द्वारा एक ही साथ क्यों नहीं दिया गया है। तब कहतें हैं की समाधि तो निदिध्यासविशेष ही होती है। विशेष सामान्य से अलग होता है। इसलिए निर्विकल्प समाधि का गोबलीवर्दन्याये के द्वारा तथा वसिष्ठब्राह्मणन्याय के द्वारा अलग से उपदेश विहित है। निदिध्यासन की पक्वावस्था ही निर्विकल्प समाधि है। इसलिए पञ्चदशी के टीकाकार रामकृष्ण ने कहा है। "तस्यैव निदिध्यासनस्य परिपाकदशारूपं समाधि माह"। जिस प्रकार से आम के पक जाने पर भी वह पनस नहीं कहलाता है उसी प्रकार से निदिध्यासन की पक्वावस्था भी निदिध्यासन के अन्तर्गत ही आती है। इसलिए समाधि के द्वार ब्रह्म के लाभ में समाधि का ब्रह्मज्ञान तक आवृत्ति के विधान से श्रुतियों का विरोध नहीं है। निर्विकल्प समाधि से ही अज्ञान के नाश का प्रतिपादन किया जाता है। इसलिए निर्विकल्प समाधि ही वहाँ पर द्वारभूत सविकल्प समाधि का स्वरूप आलोचित किया गया है।

24.4) समाधि के दो प्रकार

समाधि के दो प्रकार होते है। सविकल्प तथा निर्विकल्प। दोनों प्रकार की समाधि के लक्षण में वेदान्तसार टीका सुबोधिनी में नृसिंहसरस्वतीस्वामी के द्वारा कहा गया है - "व्युत्थान-निरोधसंस्कारयो: अभिभवप्रादुर्भावे सति चित्तस्य एकाग्रतापरिणाम: समाधि:" चित्त के दो धर्म होते हैं प्रत्यय तथा संस्कार प्रत्ययरूप चित्त का उत्थान ही व्युत्थान कहलाता है वह प्रत्ययात्मक होता है। चित्त की निरुद्धावस्था के अलावा क्षिप्त-मूढ-विक्षिप्त तथा एकाग्रावस्था व्युत्थानरूप ही होती है। एकाग्रवस्था में उत्पन्न सविकल्पक भी निर्विकल्पक की दृष्टि से व्युत्थानरूप ही होता है। उस व्युत्थान का संस्कार ही व्युत्थानसंस्कार कहलाता है। चित्त के निरोध के अभ्यास से उत्पन्न संस्कार निरोध संस्कार होता है। व्युत्थानसंस्कार का ही निरोधसंस्कार के द्वारा अभिभव होता है, न की प्रत्यय के द्वारा संस्कार का अभिभव सम्भव है। इस प्रकार से चित्त के व्युत्थानसंस्कार का अभिभव होने पर निरोधसंस्कार का प्रादुर्भाव होने पर चित्त की एकाग्र स्थिति होती है वह ही समाधि कहलाती है। इस प्रकार से चित्त का ज्ञेयात्म निश्चचलावस्थान समाधि का तात्पर्य रामतीर्थाचार्य के द्वारा अभिप्रेत है।

सविकल्पक समाधि ही योग प्रोक्त सम्प्रज्ञात समाधि होती है। तथा निर्विकल्पकसमाधि ही असम्प्रज्ञात समाधि होती है। लेकिन योग प्रोक्त असम्प्रज्ञात में तथा वेदान्त प्रतिपादित निर्विकल्प समाधि में कुछ भेद होते हैं। उनका आगे आलोचन किया जाएगा। अभी सविकल्पक तथा निर्वकल्पक समाधि के स्वरूप का आलोचन किया जा रहा है।

पाठगत प्रश्न 24.2

1. विद्यारण्य स्वामी के द्वारा समाधि का लक्षण किस प्रकार से विहित है?
2. व्युत्थानावस्था किसे कहते है?

ध्यान दें:

3. व्युत्थान संस्कार का अभिभव कैसे होता है?
4. सविकल्पकसमाधि का योगदर्शन में क्या नाम है?
5. समाधि के कितने प्रकार हैं तथा वे कौन-कौन से हैं?

24.5) सविकल्पक समाधि

विकल्प भेद को कहते है। जहाँ समाधि में विकल्प भान सत्य होने पर चित्तज्ञेयब्रह्मविषय में एकाग्र होता है वह सविकल्प समाधि होती है। यह घट है इस प्रकार से घट का ज्ञान होता है। इस ज्ञान में घट ज्ञेय होता है। अहं ज्ञाता होता है। इस प्रकार से ज्ञान स्थल में यह तीन पुट हमेशा होते हैं। सविकल्प समाधि में यह त्रिपुटी रहती है। ज्ञेयाकारविरवच्छिन्नचित्तवृत्तियाँ होती है। इसलिए वेदान्त सार में सविकल्पसमाधि के विषय में कहा गया है कि "तत्र सविकल्पको नाम ज्ञातृज्ञानादिविकल्पलयानपेक्षया अद्वितीयवस्तुनि तदाकाराकारिताया: चित्तवृत्ते: अवस्थानम्" अर्थात् सविकल्प ज्ञातृज्ञानादिविकल्पलय की अपेक्षा से अद्वितीय वस्तु में तदाकार आकारित चित्तवृत्ति का अवस्थान होता है। तब मिट्टी के पदार्थ आदि का भान होने पर भी मृत् भान के समान ही द्वैतभान होने पर अद्वैतवस्तु भासित होती है। जहाँ पर समाधि में ज्ञातृज्ञानज्ञेयरूप विकल्प भासित होते हैं। उनमें लय नहीं होती है। अन्य मतानुसार अद्वितीयब्रह्मविषयिणी निरवच्छिन्न चित्तवृत्ति के उत्पन्न होने पर वह सविकल्पक समाधि कहलाती है।

अब कहते हैं की समाधि तो सकलभेद निरासपूर्वक अद्वैतब्रह्मवस्तुसाक्षात्कार के लिए प्रवर्तित होती है। लेकिन सविकल्पकसमाधि में ज्ञातृज्ञानादिभेददर्शन से अद्वैत वस्तु किस प्रकार से भासित होती है। तो कहते है कि सविकल्पक समाधि में ज्ञातृज्ञानभेद का ज्ञान होने पर भी अद्वैत ब्रह्म ही भासित होता है। जैसे सुवर्णकुण्डलादि का ज्ञान होने पर उसके उपादान सुवर्ण का भी ज्ञान होता है। जैस मिट्टी के सकोरे आदि का ज्ञान होने पर भी उसकी उपादानभूत मिट्टी का भी भान होता है। उसी प्रकार से ज्ञातृज्ञानादि के ब्रह्म विवर्तत्व से वाचारम्भणमात्रत्व से ज्ञातृज्ञानादिभान होने पर भी अद्वैतवस्तु ब्रह्म का भान ही भासित होता है। **"सर्वं खल्विदं ब्रह्म", "ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्"** इत्यादि श्रुतियों के सभी विषयों में आत्मानुभव होने पर दग्धपटन्याय से प्रपञ्चभान सत्य होने पर भी अद्वैतवस्तु भासित होती है। इसलिए शङ्कराचार्य जी ने उपदेशसाहस्री में कहा है

"दृशिस्वरूपं गगनोपमं परं सकृद्विभातं त्वजमेकमक्षरम्।
अलेपकं सर्वगतं यदद्वयं तदेव चाहं सततं विमुक्तमोम्॥" इति।

इसका यह अर्थ हैं कि दृष्ट स्वरूप गगन के तुल्य श्रेष्ठ, एकरूप से प्रकाशमान, जन्मरहित, सकलोपाधि शून्य, कूटस्थ असङ्ग, सर्वव्यापी, सदा विमुक्त जो अद्वय वस्तु है वह अहं इस प्रकार से कहलाती है इसलिए श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है

"वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।" इति च।

सविकल्प समाधि में त्रिपुटी होती है। अद्वैत ब्रह्माकाराकारिता चित्तवृत्ति होती है। यह ही समाधि योगशास्त्र में सम्प्रज्ञातसमाधि इस प्रकार से कही गई है। जिस में तत्व का अच्छी तरह से ज्ञान होता है। वह सम्प्रज्ञात समाधि होती है। इस समाधि में ज्ञेयतत्व अच्छी प्रकार से बुद्धि में आरूढ़ होता है। इसलिए यह अभिधान कहलाती है।

24.6) निर्विकल्पक समाधि

सर्वविकल्प का लय होने पर ज्ञेयाकार चित्तवृत्ति जब होती है वह ही निर्वविकल्पक समाधि

ध्यान दें:

कहलाती है। इसलिए वेदान्तसार में सदान्दयोगीन्द्र के द्वारा कहा गया है- "निर्विकल्पक: तु ज्ञातृज्ञानादिविकल्पलयापेक्षया अद्वितीयवस्तुनि तदाकाराकारिताया: चित्तवृत्ते: अतितराम् एकीभावेन अवस्थानम्" अर्थात् निर्विकल्पक ज्ञातृज्ञानलयादि कि अपेक्षा से अद्वितीयवस्तु में तदाकाराकारिता से चित्तवृत्ति के एक होने को अवस्थान कहते हैं। इसलिए इस समाधि में ज्ञातृज्ञानज्ञेयादि भेद बुद्धि का लय हो जाता है। तथा अखण्डाकारिता चित्तवृत्ति ही रुकती है। निर्विकल्पकसमाधि में चित्तवृत्तित्वसत्व होने पर भी उसका अवभास नहीं होता है। अद्वितीयब्रह्मवस्तुमात्र मे अवभासित होता है। जैसे जल तथा नमक के मिश्रण होने पर उन दोनों में भेद ग्रहण किया जाता है। जलमात्र गृहीत होता है। उसी प्रकार से निर्विकल्पकसमाधि में अद्वितीयब्रह्माकाराकारिता चित्तवृत्ति का अवभासन नहीं होता है। केवल अद्वितीय ब्रह्म ही अवभासित होता है।

योग दर्शन में प्रतिपादित असम्प्रज्ञात समाधि से निर्विकल्पसमाधि मे कुछ वैलक्षण्य है। जिस प्रकार से असम्प्रज्ञातसमाधि में चित्तवृत्तियों का तिरोभाव होता है तथा संस्कार मात्र ही अवशिष्ट रहते है। निर्विकल्पक समाधि में तो सभी चित्तवृत्तयों का तिरोभाव नहीं होता है। अखण्डाकार ब्रह्मविषयिणी चित्तवृत्ति अज्ञायमान होती हुई अवतिष्ठित होती है। इस प्रकार से इन दोनों में भेद होता है। अत: पञ्चदशीकार विद्यारण्य स्वामी नें कहा है

"वृत्तयस्तु तदानीमज्ञाता अप्यात्मगोचरा:।
स्मरणादनुमीयन्ते व्युत्थितस्य समुत्थितात्॥" इति।

इतने समय तक समाहित हुआ हूँ इत्यादि में समाहितोत्थित समाधि में अज्ञात के द्वारा वृत्ति सद्भाव का अनुमान किया जाता है।

निर्विकल्पक समाधि में तथा सुषुप्ति मूर्छादि में भी भेद होता है। सुषुप्ति में चित्तवृत्ति का अभाव होता है। समाधि में भी वैसे ही होता है। लेकिन सुषुप्ति में चित्तवृत्तियाँ नहीं होती है। निर्वकल्पसमाधि में तो चित्तवृत्तियाँ होती हैं लेकिन उनका भान नहीं होता है। इस प्रकार से समाधि तथा सुषुप्ति में भेद होता है। अत: वेदान्तसार में कहा गया है।

"ततश्च तस्य सुषुप्तेश्च अभेदशङ्का न भवति, उभयत्र वृत्त्यभाने समाने अपि तत्सद्भावासद्भावमात्रेण अनयो: भेदोपपत्ते:" इति।

पाठगत प्रश्न 24.3

1. समाधि का साधारण लक्षण क्या होता है?
2. त्रिपुटी किसे कहते है?
3. सविकल्पसमाधि क्या होती है?
4. विकल्प का भान होने पर किस प्रकार से सविकल्प समाधि में अद्वैत ब्रह्म भासित होता है?
5. ब्रह्म की सर्वात्मकद्योतिका श्रुतियाँ कौन-सी हैं?
6. निर्विकल्प समाधि कब होती है?
7. वेदान्तसार में निर्विकल्पक समाधि के स्वरूप के विषय में क्या कह गया है?
8. निर्विकल्पक समाधि में चित्त की वृत्तियाँ रुकती हैं अथवा नहीं?

ध्यान दें:

9. निर्वकल्पक समाधि में तथा असम्प्रज्ञात समाधि का क्या भेद होता है?

10. निर्विकल्पसमाधि में तथा सुषुप्ति में क्या भेद होता है?

11. समाधि में वृत्ति के स्थितिविषय में विद्यारण्य स्वामी ने क्या कहा है?

24.7) अखण्डाकारचित्तवृत्ति तथा अज्ञान का नाश

शुद्धब्रह्म ब्रह्म अज्ञान का नाश नहीं करता है। चित्तवृत्ति उपहित चैतन्य ही अज्ञान का नाश करता है। चित्तवृत्ति से तात्पर्य है चित्त का विषायाकार परिणाम। इसलिए घटज्ञानस्थलमें चक्षु इन्द्रिय के साथ घट का सम्बन्ध होता है। तब चक्षु इन्द्रियों के द्वारा मन घट के साथ संयुक्त होता है। उसके द्वारा मन घटाकार के रूप में परिणित होता है। मन का यह परिणाम ही वृत्ति कहलाता है। जैसे तडाग से नहरों में प्रवेश करता है तथा नहरों में प्रविष्ट होकर के नहर के आकार में परिणित हो जाता है। उसी प्रकार से मन चक्षु इन्द्रिय के द्वारा विषयदेश को जाता है। तथा विषयाकार हो जाता है। जिस विषय में चित्तवृत्तियाँ होती हैं वह उस विषय के अज्ञान का नाश करती हैं। यदि घटाकार चित्तवृत्ति होती है तो वह घटविषयक अज्ञान का नाश करती है तथा घट को प्रकाशित करती है। जब पटाकार चित्तवृत्ति होती है तो वह पट विषयक अज्ञान का नाश करती है तथा पट को प्रकाशित करती है। जिन वस्तुओं का आकार नहीं होता है उन विषयों में संलग्न चित्त की किस प्रकार तदाकारिता हो यह प्रश्न होने पर कहते हैं की जो अन्त: करणवृत्ति जिस विषयक अज्ञान का नाश करती है वह अन्त:करण वृत्ति ही तदाकार होती है इस प्रकार से समझना चाहिए। जिस प्रकार जो अन्त:करणवृत्ति घट विषयक अज्ञान का नाश करती है वह घटाकार हो जाती है। जो अन्त: करण वृत्ति पटविषयक अज्ञान का नाश करती है वह पटाकार हो जाती है। इस प्रकार से अन्य स्थानों पर भी समझना चाहिए। तडाग केदार आदि के उदाहरण तो बालकों के बोध के लिए हैं।

घटादि ब्रह्म में अध्यस्त होते है। घट में अज्ञान नहीं रुकता है। घट ही अज्ञान का कार्य या अज्ञान ही है। अज्ञान तो हमेशा ब्रह्म में ही रुकता है। घट ब्रह्म में अध्यस्त होता है। घटावच्छिन्न ब्रह्म में ही अज्ञान होता है। घट प्रकाशित नहीं होता है तो कहते है कि घटावच्छिन्न चैतन्य में अज्ञान है इस प्रकार से प्रतीत होता है। उस अज्ञान का विषय घट होता है। घटाकार अन्त:करणवृत्ति तबतक उस घटावच्छिन्न ब्रह्म में विद्यमान अज्ञान का नाश कर देती है। अज्ञान के आवरण के नाश से घटावच्छिन्न चैत्यन प्रकाशित होता है। चैतन्य ही प्रकाश स्वरूप होता है तथा सदा प्रकाशमान भी होता है। जैस जलती हुई लालटेन का शीशा अधिक गंदा होने पर उसका प्रकाश नहीं होता है लेकिन उसके मालिन्य को हटा देने पर उसका प्रकाश दिखाई देने लगता है। उसी प्रकार से हमेशा प्रकाशमान चैतन्य में अज्ञानावरणकारण से उसका प्रकाश नहीं जाना जाता है। लेकिन अन्त:करणवृत्ति रूपी अज्ञान का नाश होने पर फिर वह चेतन्य प्रकाशित हो जाता है। जब अज्ञान के द्वारा अनावृत्त घटावच्छिन्न चेतन्य प्रकाशित होता है तब घटावच्छिन्न चैतन्य में विद्यमान घट भी प्रकाशित होता है। संसार में यह दिखाई भी देता है की जब दीपक का प्रकाश होता है तब उसके पास में स्थित वस्तुएँ भी प्रकाशित होने लग जाती हैं। अत:घटाकार अन्त: करणवृत्ति घटावच्छिन्न चैतन्य के आवरक घटविषयक अज्ञान को दूर करती है। उसके द्वारा घटावच्छिन्न चैतन्य प्रकाशित होता है। उस चैतन्य के द्वारा विषयीकृत घट भी प्रकाशमान घटावच्छिन्नचेतन्य में अध्यस्तत्व से प्रकाशित होता है। इसलिए ब्रह्मभिन्न घटादि चित्तवृत्ति को विषय होते हैं। अज्ञान नाश के द्वारा अनावृत्त चेतन्य का विषय होता है। अनावृत्त चेतन्य शास्त्रों में फल शब्द के द्वारा कह जाता है। इसलिए घटादि वृत्तिविषय और फलविषय होते है। इसलि पञ्चदशीकार विद्यारण्य आचार्य के द्वारा कह गया है

"बुद्धितत्स्थचिदाभासौ द्वावेव व्याप्नुतो घटम्।
तत्राज्ञानं धिया नश्येदाभासेन घट: स्फुरेत्।।" इति।

ध्यान दें:

इस प्रकार से जीव का स्वरूप ब्रह्म के अज्ञान के द्वारा आवृत्त होता है। इसलिए ही जीव अपनी नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वरूपता को नहीं जानते है। ब्रह्मविषयक अज्ञान के नाश के लिए ब्रह्मविषयिणी चित्तवृत्ति अपेक्षित है। वह चित्तवृत्ति निर्विकल्पसमाधि में उत्पन्न होती है। इसी चित्तवृत्ति को शास्त्रों में अखण्डाकार चित्तवृत्ति कहा है। ब्रह्मनिरवय, अवयवविशिष्ट अवयवों के उपचयापचय से वृद्धि नाश होता है। इसलिए ब्रह्म अखण्ड होता है। इसलिए वह ब्रह्माकारचित्तवृत्ति तथा अखण्डाकारचित्तवृत्ति भी कहलाती है। इस प्रकार से निर्वकल्पसमाधि में जब ब्रह्माकार चित्तवृत्ति उत्पन्न होती है। तब ब्रह्मविषयक अज्ञान का नाश हो जाता है। स्वयंप्रकाश ब्रह्म आवरण नाश से प्रकाशित होता है। ब्रह्म के प्रकाश के लिए अज्ञाननाश मात्र अपेक्षित होता है। इसलिए ब्रह्म चित्तवृत्ति ही विषय होते होते है। ब्रह्म के स्वप्रकाशत्व स ब्रह्म फलविषय होता है। इसलिए पञ्चदशी में विद्यारण्य स्वामी ने कहा है

"फलव्याप्यत्वमेवास्य शास्त्रकृद्भिर्निवारितम्।"

"ब्रह्मण्यज्ञाननाशाय वृत्तिव्याप्तिरपेक्षिता।" इति च।

इस प्रकार से निर्विकल्पसमाधि में अखण्डाकार चित्तवृत्ति के उदय होने से ब्रह्मविषयक अज्ञान का नाश हो जाता है। अखण्डाकार चित्तवृत्ति भी अज्ञान के कार्यत्व से विनष्ट हो जाती है। तब जीव नित्य शुद्ध मुक्त स्वभाव वाला स्वरूप भूत ब्रह्म ही होता है। जैसे घटनाश होने पर घटकाश महाकाश हो जाता है उसी प्रकार से

पाठगत प्रश्न 24.3

1. किस प्रकार से चैतन्य अज्ञान का नाश करता है?
2. चित्तवृत्ति किसे कहते हैं?
3. चित्त की विषयाकारिता क्या होती है?

पाठ सार

"आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य" इत्यादि श्रुतियों में श्रवण मनन तथा निदिध्यासन के द्वारा ब्रह्मसाक्षात्कार का उपदेश दिया गया है। श्रवण अर्थात् सभी उपनिषदों का ब्रह्म में ही तात्पर्य होता है। इसलिए ब्रह्म अवधारणनुकूल मानसी क्रिया होती है। मनन ब्रह्मविषय में समापतितिविरुद्धयुक्तियों के खण्डानानुकूला मानसी क्रिया होती है। इस प्रकार से श्रवण तथा मनन के द्वारा दृढनिश्चित ब्रह्म में तद्भिन्नविषयों से अपकृष्ट मन का स्थैर्य ही निदिध्यासन होता है। निदिध्यासन के द्वारा अखण्डाकार चित्तवृत्तियों के उदय से ब्रह्मविषयक अज्ञान का नाश होता है। तथा जीव स्वस्वरूप ज्ञान से छूट जाता है।

निदिध्यासन ही समाधि होती है। निदिध्यासन की प्राथमिकी अवस्था तो सविकल्पक समाधि होती है तथा उसकी पराकाष्ठा ही निर्विकल्पकसमाधि होती है। सविकल्पक समाधि ही योगदर्शन में कही गई सम्प्रज्ञात समाधि होती है। निर्वकल्पकसमाधि योगदर्शन में कही गई असम्प्रज्ञात समाधि है। सविकल्पक समाधि ही ज्ञातृज्ञानादिविकल्पक समाधि में ज्ञातृज्ञानरूप त्रिपुटी होती है। ब्रह्माकार अबाधितनिरवच्छिन्न चित्तवृत्ति उत्पन्न होती है। निर्वकल्पक समाधि में सभी विकल्पों का लय होने के कारण ब्रह्म में तदाकारकारिता चित्तवृत्ति का एकीभाव से अवस्थान होता है। निर्विकल्पक समाधि में ही अखण्डाकारा चित्तवृत्ति होती है। लेकिन उसकी वृत्ति का अवभास नहीं होता है। योगदर्शन प्रोक्त असम्प्रज्ञात समाधि के

पाठ-24

समाधि स्वरूप

ध्यान दें:

तथा निर्विकल्पकसमाधि के यह दो ही भेद हैं की असम्प्रज्ञात समाधि में चित्तवृत्ति की स्थिति अङ्गीकार नहीं गई है। निर्विकल्पक समाधि में तो चित्तवृत्ति होती ही है।

घटादि का प्रकाश घटाकार अन्तः करण वृत्ति के द्वारा घटविषयकज्ञान के नाश होने पर सम्भव होता है। घटविषयक अज्ञान ही घटावच्छिन्न चैतन्य में होता है। आँखों का घट के साथ संयोग होने पर अन्तः करण के साथ घट सम्बन्धवश घटाकारान्तः करणवृत्ति उत्पन्न होती है। वह अन्तः करणवृत्ति ही घटावच्छिन्नचैतन्य के आवरक अज्ञान का नाश करती है। उससे घटावच्छिन्न चौत्यन्य प्रकाशित होता है। प्रकाशमान चैतन्य स्वयं में अध्यस्त घट को भी प्रकाशित करता है। इसलिए जैसे घट अन्तः करणवृत्ति का विषय होता है तथा अनावृत्त प्रकाशमान चैतन्य का भी विषय होता है। इस प्रकार से घट वृत्तिविषय तथा फल विषय होता है। स्वरूपभूतचैतन्य ब्रह्म में विद्यमान अज्ञान के नाश के लिए अखण्डाकारचित्तवृत्ति अपेक्षित होती है। अज्ञान का नाश होने पर ब्रह्म का प्रकाश स्वयं ही होता है। ब्रह्म के स्वप्रकाशत्व से। इसलिए ब्रह्मवृत्तिविषय होता है। लेकिन फल विषय नहीं होता है।

निर्विकल्प समाधि में अखण्डाकार चित्तवृत्ति का उदय होने पर अज्ञान बन्धन के नाश से जीव मुक्त हो जाता है। जीव तब अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। प्रारब्धकर्म में विद्यमान होने पर मुक्त भी जीव भी शरीर नाश पर्यन्त शरीर में निर्लिप्तता के द्वारा विद्यमान होता है। और वह अवस्था जीवन्मुक्ति कहलाती है। प्रारब्धकर्म का नाश होने पर शरीरनाश से विदेह मुक्ति सम्भव होती है।

आपने क्या सीखा

- मोक्ष के उपाय, उनका स्वरूप
- निद्धिध्यासन का स्वरूप, समाधि के अङ्ग
- समाधि की आवश्यकता,
- चित्तवृत्तियों का अज्ञान नाशकत्व
- अखण्डाकार चित्तवृत्ति का स्वरूप

पाठान्त प्रश्न

1. निदिध्यासन तथा मूर्छा में क्या भेद होते हैं?
2. सविकल्पकसमाधि का तथा निर्विकल्पकसमाधि का निदिध्यासन में किस प्रकार से अन्तर्भान होता है?
3. सम्प्रज्ञात पद का क्या अर्थ है?
4. अखण्डाकार वृत्ति के उदय होने पर क्या होता है?
5. जीवन्मुक्ति किसे कहते हैं।
6. जीव की विदेहमुक्ति कब होती है?
7. ब्रह्म का वृत्तिविषयत्व किसलिए अपेक्षित है?
8. ब्रह्म का सर्वव्यापकत्वद्योतक भगवद्गीता में क्या वाक्य है?

ध्यान दें:

9. सविकल्पक समाधि किस चित्तभूमि में उत्पन्न होती है?

10. निर्विकल्पकसमाधि किस चित्त भूमि में उत्पन्न होती है?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 24.1

1. मोक्ष ही परम पुरुषार्थ है।
2. आत्यन्तिक दु:ख की निवृत्ति तथा परमान्द की प्राप्ति मोक्ष कहलाती है।
3. श्रवण मनन तथा निद्धिध्यासन ही मोक्ष के उपाय होते हैं।
4. अखण्डाकार चित्तवृत्ति जीव के स्वस्वरूपविषयक अज्ञान का नाश करती है।
5. अन्त: करण ही जीव की उपाधि होता है।
6. "आत्मा वाऽरे द्रष्टव्य: श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य:" इति।
7. वेदान्तों के अद्वितीय ब्रह्म में तात्पर्यावधारणानुकूला मानसी क्रिया होती है।
8. शब्दावधारि अर्थ में मानान्तर विरोधशङ्का में उसके निराकरणानुकूलतर्कात्मक आत्मज्ञान जनक मानस व्यापार मनन होता है।
9. अनादिदुर्वासनाओं से विषयों में आकृष्यमाण चित्त को उनके विषयों से हटाकर आत्मविषयक स्थैर्य के अनुकूल जो मानस व्यापार होता है वह निदिध्यासन कहलाता है।
10. चित्तवृत्ति अज्ञान का नाश करती है।
11. लौकिकज्ञानस्थल में घटपटादि के साथ तादात्म्य से ब्रह्म ज्ञात होता है।
12. जबतक ब्रह्मज्ञान नहीं हो तब तक श्रवणादि की आवृत्ति करनी चाहिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 24.2

1. ध्यातृध्याने परित्यज्य क्रमाद्ध्येयैकगोचरम्।
   निवातदीपवच्चितं समाधिरभिधीयते।। इति।
2. क्षिप्तमूढ विक्षिप्त अवस्था ही चित्त की व्युत्थानावस्था है।
3. निरोधसंस्कार के द्वारा व्यत्धान संस्कार का अभिभव होता है।
4. सम्प्रज्ञात समाधि।
5. समाधि दो प्रकार की होती है। सविकल्पक समाधि तथा निर्विकल्प समाधि

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 24.3

1. व्युत्थान तथा निरोध संस्कार में अभिभव का प्रादुर्भाव होने पर चित्त की एकाग्रता का परिणाम समाधि होती है।

ध्यान दें:

2. ज्ञाता ज्ञान तथा ज्ञेय इन तीनों का समूह त्रिपुटी कहलाता है।

3. जिसमें ज्ञातृज्ञानादिविकल्प लय की अपेक्षा से अद्वितीयवस्तु में तदाकारकारिता चित्तवृत्ति का अवस्थान होता है वह सविकल्पक समाधि कहलाती है।

4. जैस सुवर्णकुण्डलादि का ज्ञान होने पर उनके उपादान सुवर्ण का भी ज्ञान हो जाता है। जैसे मिट्टी के हाथी का ज्ञान होने पर उसके उपादान भूत मिट्टी का भी ज्ञान हो जाता है। उसी प्रकार से ज्ञातृज्ञानादियों का भी ब्रह्मविवर्तत्व से वाचारम्भमणमात्रत्व से ज्ञातृज्ञानादि भान होने पर भी अद्वैत ब्रह्मवस्तु के समान भासित होता है।

5. ऐतदात्म्यमिदं सर्वं', 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इत्यादि।

6. सर्वविकल्प के लय होने पर जब ब्रह्माकार चित्तवृत्ति होती है तब निर्विकल्पसमाधि होती है।

7. निर्विकल्पक ज्ञातृज्ञानादि विकल्पों के लय की अपेक्षा से अद्वितीयवस्तु में तदाकारकारिता का चित्तवृत्ति का एकीभाव से से अवस्थान होता है।

8. असम्प्रज्ञात समाधि में चित्तवृत्तियों का तिरोभाव नहीं होता है। वहाँ केवल संस्कार मात्र ही अवशिष्ट होता है। और निर्वकल्पकसमाधि में भी सभी चित्तवृत्तियों का तिरोभाव होता है तथा अखण्डाकार ब्रह्मविषयणी चित्तवृत्ति का तिरोभाव होता है। अखण्डाकार ब्रह्मविषयणी चित्तवृत्ति अज्ञायमान होने पर अवतिष्ठित होती है इस प्रकार से इन दोनों में भेद होता है।

9. वृत्तयस्तु तदानीमज्ञाता अप्यात्मगोचरा:।

स्मरणादनुमीयन्ते व्युत्थितस्य समुत्थितात्।। इति।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 24.4

1. चित्तवृत्त्युपहित चैतन्य अज्ञान का नाश करता है।

2. चित्त का विषयाकार परिणाम ही चित्तवृत्ति होता है।

3. जो अन्तकरण वृत्ति जिस विषयक अज्ञान का नाश करती है। वह अन्त:करणवृत्ति तद्विषयाकार हो जाती है।

4. ब्रह्मभिन्न विषयों का वृत्तिविषयत्व तथा फल विषयत्व अपेक्षित होता है।

5. ब्रह्म के प्रकाश के लिए वृत्तिविषयत्व मात्र अपेक्षित नहीं होता है। ब्रह्म के स्वप्रकाशत्व से फलविषयत्व नहीं होता है।